Toppersnotes®
Unleash the topper in you

RAS

राजस्थान प्रशासनिक सेवाएं

राजस्थान लोक सेवा आयोग

भाग - 10

समाजशास्त्र, प्रबंधन, लेखांकन, अंकेक्षण एवं प्रशासकीय नीतिशास्त्र

SIERRA INNOVATIONS

RAS

समाजशास्त्र, प्रबंधन, लेखांकन, अंकेक्षण एवं प्रशासकीय नीतिशास्त्र

भाग – 10

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ सं.
1.	भारत में समाजशास्त्रीय विचारों का विकास	1
2.	भारत में समाजशास्त्रीय विचारों का विकास	7
3.	परिवर्तन की प्रक्रियाएं-संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण	16
4.	धर्मनिरपेक्षता/लौकिकीकरण	24
5.	भारतीय समाज के समक्ष चुनौतियाँ	35
6.	राजस्थान में जनजातियाँ समुदाय -भील, मीणा, गरासिया	58
	प्रबंधन	
7.	प्रबंधन - क्षेत्र, अवधारणा एवं कार्य	67
8.	विपणन	81
9.	धन का अधिकतमकरण	101
10.	नेतृत्व	115
11.	उद्यमिता	148
12.	अत्यावश्यक सेवाओं का प्रबंधन	153
	लेखांकन एवं अंकेक्षण	
13.	अंकेक्षण एवं लेखांकन	157
14.	वित्तीय विवरण	169
15.	अंकेक्षण	192
16.	बजट	205

	प्रशासकीय नीतिशास्त्र	
17.	नीतिशास्त्र एवं मानवीय मूल्	**211**
18.	नैतिक सम्प्रत्यय	**238**
19.	निजी एवं सार्वजनिक सबंधो में नीतिशास्त्र की भूमिका	**248**
20.	भगवद गीता का नीतिशास्त्र एवं प्रशासन में इसकी भूमिका	**258**
21.	गाँधी का नीतिशास्त्र	**261**
22.	भारत एवं विश्व के नैतिक चिंतको एवं दार्शनिको का योगदान मूल्य	**269**
23.	तनाव प्रबंधन	**288**
24.	संवेगात्मक बुद्धि	**293**
25.	केस स्टडी	**300**

1 CHAPTER भारत में समाजशास्त्रीय विचारों का विकास

समाजशास्त्र

- **ऑगस्त कॉम्टे** वह पहले विद्वान थे, जिन्होंने **मानवीय अन्तर्सम्बंधों के विज्ञान के संदर्भ में** 'समाज विज्ञान' शब्द का प्रयोग किया।
- **'समाज विज्ञान'** यह शब्द लैटिन शब्द **'सोसियस' (अतसंबंध)** एवं ग्रीक शब्द **'लोगस' (सिद्धान्त)** से मिल कर बना है
- **जो** मानवीय अन्तर्संबंधों से बने समाज के विज्ञान या सिद्धान्तों को व्यक्त करता है।
- **हर्बर्ट स्पेंसर** ने समाज के **क्रमबद्ध अध्ययन** का विकास किया और खुलकर **समाजशास्त्र शब्द** का प्रयोग किया।
- सरल शब्दों में कहें तो **समाजशास्त्र व्यक्तियों को अध्ययन** करने का एक तरीका है।
- यह सामाजिक **संबंधों, संस्थाओं और समूहों का वैज्ञानिक** अध्ययन है।
- **ऑगस्त कॉम्टे** ने समाज विज्ञान को परिभाषित करने की **समस्या के समाधान के रूप में इसे एक विधी विरोध** के रूप में लिया है और इसकी प्रकृति की रूपरेखा प्रस्तुत की।
- **हॉबहाउस** ने समझाया कि कैसे समाजशास्त्र "मानवीय मस्तिष्कों की अन्योन्य क्रियाओं" का अध्ययन है?
- **पार्क एवं बर्गस** "समाजशास्त्र **सामूहिक व्यवहार का विज्ञान** है"।
- **एमाइल दुर्खिम** ने "समाजशास्त्र /सामाजिक प्रक्रमों का अध्ययन कहा है।"
- **टी.बी. बाटोमोर के अनुसार -** हजारों वर्षों से लोगों ने उन समाजों व समूहों का अवलोकन और चिन्तन किया है, जिसमें वे रहते हैं, फिर भी समाजशास्त्र एक आधुनिक विज्ञान है और एक शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है।

उपयोगिता

- विशेष तौर पर भारत जैसे विविधतावादी देशों में इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है।
- भारतीय समाज में प्रत्येक स्तर पर विभिन्नता देखी जा सकती हैं एक ओर धार्मिक-आर्थिक विषमताएँ हैं तो दूसरी तरफ परम्परावादी मूल्यों से हमारा नाता अभी बना हुआ है।
- शहरी समुदायों में आधुनिकता के मूल्य भी विद्यमान है।
- भारतीय समाज में व्याप्त परम्परा व आधुनिकता का मिश्रण भारत में भूमिका संघर्ष (Role Conflicts) की स्थिति पैदा करता है।
- इसके अतिरिक्त भारतीय समाज अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना भी कर रहा है।
    - जातिवाद (Casteism)
    - सामाजिक असमानता (Social inequality)
    - स्त्रियों की गिरती स्थिति (Deterriorating condition of women)
- इनको समझने के लिए हमें अपने समाज को समझना होगा।
    - इस तरह समस्याओं के निराकरण के क्षेत्र में यह हमारी सहायता कर सकता है।
- भारतीय परिप्रेक्ष्य में, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, बाल अपराध, ग्रामीणों की समस्याओं के सामाजिक कारणों को खोज कर इनकी निष्पक्ष व्याख्या की जा सकती है।
    - इसी प्रकार भारत की राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्वों को समाप्त करके एकता को बनाए रखा जा सकता है।
    - सम्पन्न व गौरवमयी परम्पराओं को बनाए रखकर सांस्कृतिक पहचान की रक्षा की जा सकती है।
- वर्तमान परिस्थितियों के विश्लेषण के आधार पर नवीन परिस्थितियों के प्रति अभियोजन क्षमता की वृद्धि होती है।
    - इसके साथ-साथ समाजशास्त्र का अध्ययन ग्रामीण समाज के विकास में बाधाओं को समझने में सहायक है, जनजातियों की समस्याओं को समझने में उपयोगी है।
    - परिवार नियोजन सम्बन्धी समस्याओं को समझने में उपयोगी है।
- हालाँकि उपर्युक्त वर्णित समस्याओं के राजनीतिक, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक पहलू भी हैं, परन्तु समाजशास्त्रीय पहलू की उपेक्षा से ये समस्याएँ पूर्णतः कब्जे में नहीं आ पाएँगी।

समाजशास्त्र की प्रकृति

- समाजशात्र की प्रकति के रूप में यह देखा जाता है कि समाजशास्त्र कला है या विज्ञान।
- यदि विज्ञान है तो विशुद्ध भौतिक विज्ञान है या आंशिक विज्ञान।
- कुछ विद्वान वैज्ञानिक मानते हैं तथा कुछ वैज्ञानिक नहीं मानते ।
- विज्ञान के मानदण्डों पर समाजशास्त्र को नापने के लिए विज्ञान की विशेषता पर एक नजर डालना जरूरी है।

समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति

- समाजशास्त्र के जनक **आगस्ट काम्टे सहित, इमाईल दुर्खिम, मेक्सवेबर** इत्यादि विद्वानों ने समाजशास्त्र को आरम्भ से ही विज्ञान माना है।
- हम निम्न आधार पर समाजशास्त्र को विज्ञान मानते हैं
    - वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग

- वस्तुनिष्ठ अध्ययन
- सत्यापनीय
- निश्चितता
- कार्य-कारण सम्बन्धों की स्थापना
- सामान्यीकरण करना
- पूर्वानुमान लगाना
- आनुभाविक अध्ययन
- सार्वभौमिकता

- समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है और इस कारण इसकी अपनी सीमाएँ (Limitations) है
- प्राकृतिक विज्ञानों की विषय सामग्री विवेकशील नहीं होती है किन्तु समाजशास्त्र की विषय सामग्री मनुष्य होते हैं जो कि अपने व्यवहार में परिवर्तन ला सकते हैं
- अतः समाजशास्त्र में **सत्यापनीयता व पूर्वानुमान लगाना** प्राकृतिक विज्ञानों से अधिक कठिन होता है।
- इसी प्रकार प्राकृतिक वैज्ञानिकों का अपनी अध्ययन सामग्री से किसी प्रकार का अपनापन, प्यार, मोह, ईष्या, द्वेष, लगाव या नफरत इत्यादि नहीं होता है।
- किन्तु एक समाजशास्त्री अपने जैसे दूसरे मनुष्यों का अध्ययन करता है तो उसके मन में पूर्वधारणा हो सकती है जो उसके अध्ययन को प्रभावित कर सकती है
- ऐसी स्थिति में समाजशास्त्र में वस्तुनिष्ठ अध्ययन करना प्राकृतिक विज्ञानों में अधिक कठिन है।
- अतः हमें यह ध्यान रखना होगा कि **समाजशास्त्र समाज विज्ञान है, प्राकृतिक विज्ञान नहीं है।**

समाजशास्त्र प्राकृतिक विज्ञान क्यों नहीं

1. वस्तुनिष्ठता का अभाव-
2. सामाजिक घटनाओं की परिवर्तनशीलता तथा जटिलता-
3. सामाजिक घटनाओं तथा तथ्यों की माप में कठिनाई-
4. समाजशास्त्र में प्रयोगशाला का अभाव-
5. समाजशास्त्रीय अध्ययनों में सर्वाभौमिकता का अभाव-
6. समाजशास्त्र भविष्यवाणी करने में समर्थ नहीं है-

समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति

1. **समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, न कि प्राकतिक-**
   - चँकि समाजशास्त्र. प्राकतिक एंव भौतिक घटनाओं का अध्ययन नहीं करता है अतः इसे प्राकृतिक विज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जाता है।
   - समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान इसलिए है क्योंकि इसमें सामाजिक घटनाओं, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक समूहों, सामाजिक **प्रक्रियाओं एवं सामाजिक समस्याओं** का ही अध्ययन किया जाता है।
2. **समाजशास्त्र वास्तविक अथवा प्रत्यक्षवादी विज्ञान है न कि आदर्शात्मक**-
   - समाजशास्त्र मे पक्षपात-रहित होकर केवल उन्हीं सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।
   - समाजशास्त्र 'क्या है' का अध्ययन करता है 'क्या होना चाहिए' का नहीं
   - यह सामाजिक घटनाओं को अच्छा-बुरा या सही-गलत नहीं कहता है और न ही आर्दशवादी बातें करता है बल्कि सामाजिक घटनाओं के प्रति तटस्थ रहता है।
   - सामाजिक घटनाएँ जैसी हैं उन्हें उसी रूप में देखता है एवं प्रस्तुत करता है।
3. **समाजशास्त्र एक विशुद्ध विज्ञान है, व्यवहारिक विज्ञान नहीं है-**
   - समाजशास्त्र एक विशद्ध विज्ञान है इसीलिए यह सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है एवं उनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। किन्तु इस ज्ञान को या सिद्धान्तों को वह प्रयोग में नहीं लाता है।
   - समाजशास्त्र केवल सिद्धान्त बनाता है इन सिद्धान्तों का व्यवहार में उपयोग अन्य शास्त्र जैसे सामाजिक कार्य, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि करते हैं।
4. **समाजशास्त्र एक अमूर्त विज्ञान है, मूर्त विज्ञान नहीं है**-
   - समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों तथा सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जो दिखाई नहीं देते हैं अर्थात जिनकी प्रकृति अमूर्त है। इसीलिए समाजशास्त्र को अमूर्त विज्ञान कहते है।
   - यह भौतिक वस्तुओं अथवा मूर्त चीजें जो दिखाई देती है का अध्ययन नहीं करता है जैसे जीवन जन्तु, पेड़-पौधे, कुर्सी-मेज व्यक्ति आदि।
5. **समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है न कि विशेष विज्ञान-**
   - समाजशास्त्र समाज की सभी घटनाओं का अध्ययन सामान्य रूप से करता है।
   - समाजशास्त्र उन सामान्य नियमों का अध्ययन करता है जो विभिन्न सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित होते हैं।
   - अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास अथवा भूगोल की तरह कि विशेष घटना, व्यक्ति अथवा कारक के अध्ययन में ही रूचि नहीं लेता है।
6. **समाजशास्त्र एक तार्किक तथा अनुभवसिद्ध विज्ञान है-**
   - समाजशास्त्र द्वारा किए जाने वाले अध्ययन तर्क पर एवं अनुभव पर आधारित होते हैं अर्थात यह कार्य क्षेत्र में जाकर प्राथमिक रूप से प्राप्त तथ्यों का अध्ययन करता है
   - उदाहरण के लिए महिला शिक्षा की वास्तविकता जानने के लिए जब हम स्वयं महिलाओं से मिलकर उनसे सूचनाएँ प्राप्त करते हैं तो इन सूचनाओं को ही अनुभवसिद्ध तथ्य कहते है। साथ ही ये तथ्य तार्किक भी होते है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समाजशास्त्र एक प्रत्यक्षवादी, विशुद्ध, अमूर्त, सामान्य, तार्किक तथा अनुभवसिद्ध विज्ञान है।

समाजशास्त्री परिप्रेक्ष्य

परिप्रेक्ष्य का अर्थ

- किसी भी विषय के अध्ययन में एक विशेष पक्ष या पहलू या दृष्टिकोण को लेकर चला जाता है।
  - यह विशेष दृष्टिकोणीय झुकाव (Ideological Orientation) परिप्रेक्ष्य कहलाता है।
- किसी वस्तु के अनेक पक्ष हो सकते हैं तथा उसके पक्ष विशेष का अध्ययन अनुशासनों से किया जाता है।

समाजशास्त्र का उद्भव व विकास

- कुछ ऐसी सामाजिक स्थितियाँ जिन्हें समाजशास्त्र के उद्भव के लिए जिम्मेदार माना जाता है, निम्न है:-
- यूरोप में वाणिज्यिक क्रान्ति
  - पुर्तगाल, इंग्लैण्ड, हालैण्ड और स्पेन जैसे देशों में एशिया के देशों से व्यापार को बढ़ाने की होड़ शुरू
  - भारत और अमेरिका जैसे देशों की खोज हुई।
  - इससे यूरोप का व्यापार एक वैश्विक व्यापार में बदलने लगा।
  - कागज की मुद्रा का विकास हुआ।
  - बैकिंग व्यवस्था का विकास हुआ,
  - मध्यमवर्ग का उदय हुआ,
  - मध्यकालीन यूरोप में पुनर्जागरण (Renaissance) हुआ
  - इसे वैज्ञानिक क्रान्ति की शुरूआत माना जाता है,
  - चिकित्सा के क्षेत्र में मानव शरीर विच्छेदन को स्वीकार किया गया, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, गणित व खगोल विज्ञान इत्यादि का विकास हुआ।
- **फ्रांसीसी क्रान्ति(1789)**
  - इस क्रान्ति द्वारा स्वतन्त्रता, समानता एवं बंधुत्व का विचार उभर कर सामने आया,
  - लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गये।
  - क्रान्ति द्वारा व्यवस्था बदल गई व लोकतन्त्र की स्थापना हुई।
  - फ्रांसीसी क्रान्ति में मान्टेस्क्यु (Montesquieu) वाल्टेयर (Voltaire) व रूसो (Rousseau) जैसे दार्शनिक विचारकों के विचारों का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है,
  - इनके विचारों से तार्किकता का विकास हुआ।
- **औद्योगिक क्रान्ति**
  - अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध व उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में यूरोप के कुछ देशों की तकनीक और सामाजिक-सांस्कृतिक व आर्थिक स्थितियों में बड़ा बदलाव आया।
  - औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत इंग्लैण्ड से मानी जाती है।
  - इस क्रान्ति ने यूरोप व अन्य देशों के नागरिकों के सामाजिक व आर्थिक जीवन में अनेक बदलाव किये।
  - उद्योगों का मशीनीकरण हुआ,
  - उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई,
  - पूँजीवाद का विकास हुआ,
  - औद्योगिक श्रमिकों के रूप में नये वर्ग का उदय हुआ,
  - लोग कृषि व कुटीर उद्योगों को छोड़कर बड़े उद्योगों में मजदूरी करने लगे।
  - नये नये शहरों का विकास होने लगा किन्तु इस व्यवस्था में श्रमिकों का शोषण बड़े पैमाने पर हो रहा था।

निष्कर्ष

- इस प्रकार यूरोप में होने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक बदलावों ने एक ऐसे विषय की आवश्यकता को उत्पन्न किया जो सामाजिक व्यवस्था का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन कर सके
- अतः सन् 1838 में फ्रांसीसी दार्शनिक आगस्ट काम्टे (Auguste Comte) ने एक विषय के रूप में समाजशास्त्र की शुरूआत की।
- उन्होंने पहले इसे सामाजिक भौतिकी (Social Physics) नाम दिया जिसे बाद में समाजशास्त्र (Sociology) कर दिया।

भारत में समाजशास्त्र का विकास

- भारत में समाजशास्त्र की एक विषय के रूप में देर से शुरूआत हुई।
- किन्तु सामाजिक जीवन के विषय में अध्ययन प्राचीन काल से ही होता रहा है।
- 'रामायण' व 'महाभारत' जैसे ग्रन्थ, कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' व मनु द्वारा लिखित 'मनुस्मृति' तथा ऐसे ही अनेक ग्रन्थों में हमें तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था के विषय में पता चलता है
- किन्तु यह ग्रन्थ किसी विषय के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर नहीं लिखे गये थे।
- यूरोप में समाजशास्त्र के उद्भव के प्रमुख कारण फ्रांसीसी क्रान्ति व औद्योगिक क्रान्ति माने जाते हैं
- भारत में समाजशास्त्र बहुत बाद में आया तथा उस समय भारत ब्रिटिश अधीनता में था
- इस कारण यहाँ प्रारम्भिक समाजशास्त्रीय अध्ययन अधिकांशतः यूरोपियन विद्वानों द्वारा किये गये।
- भारत में समाजशास्त्र की वास्तविक शुरूआत **बम्बई विश्वविद्यालय से** मानी जाती है। जहाँ सन् **1919 में पैट्रिक गेडिस** की अध्यक्षता में समाजशास्त्र विभाग की शुरूआत हुई
- हालांकि ऐच्छिक विषय के रूप में यह सन् 1914 से पढ़ाया जाने लगा था।
- इसी तरह **1917 में ऐच्छिक विषय के रूप** में कलकत्ता विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र की शुरूआत हुई।
- **1921 में लखनऊ विश्वविद्यालय** में समाजशास्त्र की शुरूआत हुई
- **1923 में आन्ध्र व मैसूर विश्वविद्यालयों** में भी इसकी शुरूआत हुई।

- 1952 में **'Indian Sociological Society'** की स्थापना की गई। जिससे सभी समाजशास्त्रियों को जुड़ने का आधार मिला।
- प्रारम्भ में समाजशास्त्र को अन्य विषयों के साथ पढ़ाया जाता था। जिनमें **मानवशास्त्र एवं अर्थशास्त्र** प्रमुख थे।
- **'टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल वर्क** लखनऊ तथा **'इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साईन्स'** आगरा जैसे अनुसंधान केन्द्रों की भी स्थापना हुई, जहाँ **समाजशास्त्रीय अनुसंधान** होने लगे।
- **भारत के प्रमुख समाजशास्त्रियों में से कुछ निम्न है**-
  - एस.सी. दूबे,
  - एम.एन. श्रीनिवास - संस्कृतिकरण' 'पश्चिमीकरण' व 'प्रभुत्व जाति' की अवधारणा
  - ए.के. सरन,
  - डी.एन. मजुमदार,
  - जी.एस. घुरिये,
  - के.एम. कपाड़िया,
  - पी.एच. प्रभु,
  - ए.आर. देसाई,
  - इरावती कर्वे,
  - राधाकमल मुकर्जी
  - योगेन्द्र सिंह इत्यादि।

भारतीय समाजशास्त्री

गोविन्द सदाशिव घुर्ये (1893-1983)

- गोविन्द सदाशिव घुर्ये का बौद्धिक एवं अकादमिक क्षेत्र में बड़ा नाम है।
- इन्हें भारतीय समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है।
- इन्होंने न केवल भारत में समाजशास्त्र को स्थापित किया वरन् ऐसे छात्रों को भी तैयार किया जिन्होंने देश में समाजशास्त्र के समाजशास्त्रीय शोध तथा सिद्धान्तों के द्वारा भारतीय समाजशास्त्र को मजबूती प्रदान की।

घुर्ये की प्रमुख कृतियां	घुर्ये का योगदान
• कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया 1932 • सेक्स हेबिट्स ऑफ मिडिल क्लास पिपल 1938 • दि एबओरिजनल्स सो-काल्ड एण्ड दियर फ्यूचर • कल्चर एण्ड सोसायटी 1945 • आफ्टर ए सेन्चुरी एण्ड ए क्वार्टर 1960 • कास्ट क्लास एण्ड ओक्युपेशन 1961 • फैमिली एण्ड किन इन इण्डो यूरोपियन कल्चर 1962 • सिटीज एण्ड सिविलाइजेशन 1962 • दि शिड्युल्ड ट्राइब्ज 1963 • दि महादेव कोलिज 1963 • एनोटोमो ऑफ ए रूरल कम्युनिटी 1963 • विदर इण्डिया 1974 • इण्डिया रिक्रियेट्स डेमोक्रेसी 1978 • वैदिक इण्डिया 1979	• भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता। • प्रजाति। • धर्म। • जाति एवं नातेदारी व्यवस्था। • आदिवासी अध्ययन। • ग्रामीण नगरीकरण। • भारतीय साधु। • सामाजिक तनाव। • भारतीय वेशभूषा

डी. पी. मुकर्जी (1894- 1961)

डी.पी. मुकर्जी की प्रमुख कृतियाँ	डी.पी. मुकर्जी का प्रमुख योगदान
• व्यक्तित्व और सामाजिक विज्ञान। • समाजशास्त्र की मूल अवधारणाएं • आधुनिक भारतीय संस्कृति। • भारतीय युवकों की समस्याएं। • टैगोर एक अध्ययन। • भारतीय संगीत का परिचय • भारतीय इतिहास पर एक अध्ययन • विचार एवं प्रतिविचार 1946 • विविधताएं 1958	• व्यक्तित्व। • आधुनिक भारतीय संस्कृति । • परम्पराएं। • समाजशास्त्र की प्रकृति तथा पद्धति • नये मध्यम वर्ग की भूमिका। • भारतीय इतिहास की रचना। • आधुनिकीकरण। • संगीत।

ए.आर. देसाई (1915-1994)

- अक्षय कुमार रमनलाल देसाई का जन्म 16 अप्रेल 1915 में गुजरात में नाड़ियाद कस्बे में हुआ था।

ए.आर.देसाई की कृतियाँ	ए.आर.देसाई का योगदान
• सोशयल बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म 1946 • रिसेन्ट ट्रेन्ड्स इन इंडियन नेशनलिज्म 1960 • रूरल सोश्लोजी इन इंडियन 1969 • स्लम्स एण्ड अरबेनाइजेशन (डि.पिल्लई के साथ)1970 • स्टेट एण्ड सोसाइटी इन इंडिया 1975 • पीजेन्ट् स्ट्रगल इन इंडिया 1979 • इंडियाज पाथ ऑफ डेवलपमेंट 1984 • अग्रेरियन स्ट्रगल्स इन इंडिया आफ्टर इंडिपेन्डेंस 1986	• भारत में ग्राम। • भारतीय समाज का रूपान्तरण • भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि। • किसान संघर्ष • राज्य और समाज • गंदी बस्तियाँ और नगरीकरण • राष्ट्रीय आन्दोलन

एम.एन श्रीनिवास (1916-1999)

- मैसूर नरसिम्हाचार श्रीनिवास का जन्म 16 नवम्बर 1916 मैसूर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था।
- उनकी दीक्षा ब्राह्मण परम्पराओं-ब्राह्मणत्व के प्रशिक्षण में हुई थी।
- उन्होंने घुर्ये के सान्निध्य में एम.ए. किया।
- उन्होंने एम.ए. के शोध प्रबंध में "मैसूर में विवाह और परिवार" को अपने अध्ययन का विषय बनाया।
- उन्होंने मुम्बई विश्वविद्यालय में ही "दक्षिण भारत के कुर्ग लोगों" के विषय पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की।
- इसी विषय पर आपने अपनी पुस्तक-रिलिजन एण्ड सोसाइटी अमांग दि कुर्ग ऑफ साउथ इंडिया का प्रकाशन 1952 में करवाया। यह पुस्तक काफी लोकप्रिय हुई।

एम.एन. श्रीनिवास की कृतियां	एम. एन. श्रीनिवास का योगदान
• मैसूर में विवाह और परिवार 1942 • दक्षिण भारत के कुर्ग में धर्म व समाज 1952 • भारतीय गांव 1955 • आधुनिक भारत में जाति और अन्य लेख 1962 • आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन 1966 • दि रिमेम्बर्ड विलेज 1976 • भारत : सामाजिक संरचना 1980 • प्रभु जाति और अन्य लेख 1987 • दि कोहिजिवे रोल ऑफ संस्कृताईजेशन 1989 • ऑन लिविंग इन ए रिवोल्यूशन एण्ड अदर ऐसेज 1972 • विलेज, कास्ट, जेन्डर एण्ड मेथड़ 1996 • इण्डियन सोसायटी थू पसर्नल राइटिंग्ज 1996	• सामाजिक परिवर्तन : संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, ब्राह्मणीकरण • धर्म और समाज • गांव • जाति • प्रभु जाति • आधुनिक भारत • विवाह और परिवार

आर. के मुकर्जी (1889-1968)

- राधाकमल मुकर्जी का जन्म 7 सितम्बर 1889 को बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले के बरहामपुर में बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था।
- मुकर्जी की प्रारम्भिक शिक्षा बरहामपुर में हुई। वे बरहामपुर के कृष्णनाथ महाविद्यालय के बी.ए. के छात्र रहे।
- बाद में उन्होंने प्रेजीडेन्सी महाविद्यालय कोलकाता से इतिहास तथा अंग्रेजी साहित्य में आनर्स किया।
- यहीं पर इनका सम्पर्क एच.एम. पेरीवाल, अरविन्द घोष के भाई एम. घोष और भाषाविद हरिनाथ डे जैसे विद्वानों से हुआ। इन विद्वानों का मुकर्जी पर बहुत प्रभाव पड़ा।
- 1910 में बरहामपुर महाविद्यालय में अर्थशास्त्र के शिक्षक बने यहीं पर इन्होंने "फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन इकोनोमी' पुस्तक लिखी।
- 1917 से 1921 तक कोलकाता विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र विषयों को पढ़ाया।
- यहीं पर इन्होंने "ग्रामीण समुदाय में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन" पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की।

राधाकमल मुकर्जी की कृतियां	मुकर्जी का समाजशास्त्रीय योगदान
• दी फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन इकॉनोमिक्स 1916 • दी रूरल इकॉनोमी ऑफ इण्डिया 1926 • रिजनल सोशयोलॉजी 1926 • दी लेण्ड प्रोबल्म ऑफ इण्डिया 1927 • इन्ट्रोडेक्शन ऑफ सोशयल साईकोलॉजी 1928 • फील्ड एण्ड फारमर ऑफ ओउध 1929 • दी थ्री वेस : दी वेस ऑफ ट्रासेंडालिस्ट रिलिजन एज ए सोशयल नार्म 1929 • सोशयोलॉजी ऑफ मैसटीसीजल 1931 • रिजनल बैलेन्स ऑफ मेन 1938 • मेन एण्ड हीस हेबेटेशन 1940 • इण्डियन वर्किंग क्लास 1945 • इन्टर कास्ट टेंशन 1951 • ए जनरल थ्योरी ऑफ सोसायटी 1956 • दी फिलोसॉफी ऑफ सोशयल साईन्स 1960 • सोशयल प्रोफाईल ऑफ ए मैटोपॉलिस 1963 • दी डाईमेन्शनस ऑफ ह्यूमन वेल्यूस 1964	• भारतीय संस्कृति • समाज का सिद्धान्त • सार्वभौमिक सभ्यता का सिद्धान्त • आर्थिक क्रियाकलाप और सामाजिक व्यवहार • व्यक्तित्व, समाज और मूल्य • समुदायों का समुदाय • नगरीय सामाजिक समस्या • सामाजिक परिस्थितिकी

Toppersnotes
Unleash the topper in you

2 CHAPTER भारतीय समाज में जाति एवं वर्ग

जाति व्यवस्था

- जाति शब्द **अंग्रेजी शब्द 'कास्ट' (Caste) का** हिन्दी रूपान्तर है।
- इसका **पहला उपयोग 1563 ई० में ग्रेसिया डी ओर्टा** ने किया था।
- उनके शब्दों में, "लोग अपने पैतृक व्यवसाय को परिवर्तित नहीं करते हैं। इस प्रकार जूते बनाने वाले लोग एक ही प्रकार (जाति) के हैं।'
- **अब्बे डुबायस** ने इसे प्रयुक्त किया है। उनका मत है कि **'कास्ट' शब्द यूरोप में किसी कबीले और वर्ग को** व्यक्त करने के लिए उपयोग में लिया जाता रहा है।
- **ए० आर० वाडिया (**A. R. Wadia) का मत है कि 'कास्ट' शब्द लैटिन भाषा के 'कास्टस' (Castus) से मिलता-जुलता शब्द है जिसका अर्थ विशुद्ध प्रजाति या नस्ल होता है।
- कुछ लोग इस शब्द की **उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'कास्टा' (Casta)** से मानते हैं जिसका अर्थ प्रजातीय तत्त्व, नस्ल, अथवा पैतृक गुणों से सम्पूर्ण है।
- हिन्दी का **'जाति' शब्द संस्कृत भाषा की 'जन' धातु से बना** है जिसका अर्थ **'उत्पन्न होना' व 'उत्पन्न करना** है।
- इस दृष्टिकोण से जाति का अभिप्राय जन्म से समान गुण वाली वस्तुओं से है। परन्तु समाजशास्त्र में 'जाति' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थों में किया जाता है।

जाति की परिभाषाएँ

- **रिजले (Risley) के अनुसार**-"यह परिवार या कई परिवारों का संकलन है जिसको एक सामान्य नाम दिया गया है, जो किसी काल्पनिक पुरुष या देवता से अपनी उत्पत्ति मानता है तथा पैतृक व्यवसाय को स्वीकार करता है और जो लोग विचार कर सकते हैं उन लोगों के लिए एक सजातीय समूह के रूप में स्पष्ट होता है।'
- **मैकाइवर एवं पेज (Maclver and Page) के अनुसार**-"जब व्यक्ति की प्रस्थिति पूर्णत: पुर्वनिश्चित होती है अर्थात जब व्यक्ति अपनी प्रस्थिति में किसी भी तरह के परिवर्तन की आशा लेकर नहीं उत्पन्न होता, तब वर्ग जाति के रूप में स्पष्ट होता है।"
- **मजूमदार एवं मदन** (**Majumdar and Madan) के अनुसार**-"जाति एक बन्द वर्ग है।"
- **दत्त (Dutta) के अनुसार-**
  - **"**एक जाति के सदस्य जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं।
  - अन्य जाति के लोगों के साथ भोजन करने और पानी पीने के सम्बन्ध में इसी प्रकार के परन्तु कुछ कम कठोर नियन्त्रण हैं।
  - अनेक जातियों के कुछ निश्चित व्यवसाय हैं।
  - जातियों में संस्तरणात्मक श्रेणियाँ हैं, जिनमें सर्वोपरि ब्राह्मणों की सर्वोच्च स्थिति है।
  - मनुष्य की जाति का निर्णय जन्म से होता है।
  - यदि व्यक्ति नियमों को भंग करने के कारण जाति से बाहर न निकाल दिया गया हो तो एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्तन होना सम्भव नहीं है।"
- **कूले** (**Cooley) के अनुसार**-"जब कोई भी वर्ग पूर्णत: वंशानुक्रमण पर आधारित हो जाता है तो वह जाति कहलाता है।"
- **केतकर (Ketkar) के अनुसार**-"जाति जिस रूप में आज है उसे एक सामाजिक समूह के रूप में समझा जा सकता है जो मुख्यतः दो विशेषताओं से मिलकर बनता है-पहले यह कि इसके सदस्य जन्म से ही बन जाते हैं, दूसरे सभी सदस्य अत्यन्त कठोर सामाजिक नियम द्वारा समूह से बाहर विवाह करने से रोक दिए जाते हैं।'
- **जाति की परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष**
  - जाति का पद व्यक्ति को जन्म से प्राप्त होता है
  - जाति की सदस्यता केवल उसमें पैदा होने वाले व्यक्तियों तक ही सीमित होती है।
  - एक बार जाति में जन्म लेने के बाद जाति में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।
  - जाति अन्तर्विवाही होती है अर्थात् एक जाति के व्यक्ति को विवाह अपनी जाति में ही करना होता है।
  - प्रत्येक जाति का व्यवसाय निश्चित रहता है
  - उसमें भोजन तथा सामाजिक सहवास से सम्बन्धित प्रतिबन्ध होते हैं।

भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति

- पहले भारत में हर एक व्यक्ति की जाति अपने व्यवसाय से परिभाषित की जाती थी और व्यक्ति की मृत्यु तक उसे उसी व्यवसाय में रहना होता था।
- उच्च जाति के लोगों को किसी अन्य जाति के लोगों से आपस में मिलने और शादी करने की अनुमति नहीं मिलती थी।
  - इस प्रकार भारत में जातियाँ वास्तव में समाज को अलग कर रही थीं।
- आम तौर पर जाति व्यवस्था हिंदू धर्म से जुड़ी होती है।
  - ऋग्वेद (प्रारंभिक हिंदू पाठ) के अनुसार चार वर्ग थे जिन्हें 'वर्ण' कहा जाता था।
  - वर्गों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते थे।
  - अधिकांश इतिहासकार आज भी मानते हैं कि आज की जाति व्यवस्था इन वर्गों पर आधारित है।
- इसके अलावा यहाँ पाँचवीं श्रेणी भी मौजूद थी जो शूद्रों से भी कमजोर मानी जाती थीं और वह ''अछूत'' या दलित होते थे।

- ये वे व्यक्ति थे जो मलमूत्र या मृत पशुओं को निकालने का कार्य करते थे।
  - इसीलिए उन्हें मंदिरों में प्रवेश करने और एक ही जल स्रोत से पानी पीने आदि की अनुमति नहीं होती थी।
- छुआ-छूत भेद-भाव का सबसे सामान्य रूप है जो कि भारत में जाति व्यवस्था पर आधारित है।
- लेकिन कब और कितनी जातियाँ भारत में उत्पन्न हुई हैं, यह स्पष्ट नहीं है।

- जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के संबंध में कई सिद्धांत आगे रखे गए हैं लेकिन अब तक इस संबंध में कोई ठोस सबूत नहीं मिला है।

उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांत

- **पारंपरिक सिद्धांत**
  - इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्माण्ड के निर्माता ब्रह्मा जी ने जाति व्यवस्था का निर्माण किया था।
  - ब्रह्मा जी के विभिन्न अंगों से जैसे उनके मुख से ब्राह्मणों का, हाथ से क्षत्रिय, वैश्य पेट से और इसी तरह अन्य विभिन्न जातियों का जन्म हुआ।
  - विभिन्न जातियों के लोग अपने मूल स्रोत के अनुसार कार्य करते हैं।
  - प्राचीन भारत में विभिन्न उपजातियाँ इन जातियों से पैदा हुईं और इसने मनु के वर्णन के अनुसार प्राचीनकाल-संबंधी व्याख्या प्राप्त की है।
  - इस सिद्धांत की आलोचना की गई है क्योंकि यह एक अलौकिक सिद्धांत है और इसके आधार अस्तित्व सिर्फ दिव्य (कल्पनीय) हैं।
- **राजनीतिक सिद्धांत**
  - इस सिद्धांत के अनुसार ब्राह्मण समाज पर शासन करने के अलावा उन्हें पूर्ण नियंत्रण में रखना चाहते थे।
    - इसलिए उनके राजनीतिक हित ने भारत में एक जाति व्यवस्था बनाई।
      - ✓ इसमें एक फ्रांसीसी विद्वान निबे दुबास ने मूल रूप से इस सिद्धांत को आगे बढ़ाया, जो भारतीय विचारकों डॉ. घुर्ये जैसे लोगों से भी समर्थित थे।
- **धार्मिक सिद्धांत**
  - यह माना जाता है कि विभिन्न धार्मिक परंपराओं ने भारत में जाति व्यवस्था को जन्म दिया था।
  - राजा और ब्राह्मण और धर्म से जुडे लोग उच्च पदों पर आसीन थे लेकिन अलग-अलग लोग शासक के यहाँ प्रशासन के लिए अलग-अलग कार्य करते थे जो बाद में जाति व्यवस्था का आधार बन गए थे।
  - इसके साथ-साथ, भोजन की आदतों पर प्रतिबंध लगाया जो जाति व्यवस्था के विकास के लिए प्रेरित हुआ।
  - इससे पहले दूसरों के साथ भोजन करने पर कोई प्रतिबंध नहीं था क्योंकि लोगों का मानना था कि उनका मूल एक पूर्वज से था।
    - लेकिन जब उन्होंने अलग-अलग देवताओं की पूजा शुरू की तो उनकी भोजन की आदतों में बदलाव आया।
  - इसने भारत में जाति व्यवस्था की नींव रखी।
- **व्यावसायिक सिद्धांत**
  - नेस्फील्ड ने मूल रूप से व्यावसायिक नाम का सिद्धांत दिया, जिसके अनुसार भारत में जाति किसी व्यक्ति के व्यवसाय के अनुसार विकसित हुई थी।
    - जिसमें श्रेष्ठ और निम्नतर जाति की अवधारणा भी इसके साथ आयी क्योंकि कुछ व्यक्ति बेहतर नौकरियाँ कर रहे थे और कुछ कमजोर प्रकार की नौकरियों में थे।
  - जो लोग पुरोहितों का कार्य कर रहे थे, वे श्रेष्ठ थे और वे ऐसे थे जो विशेष कार्य करते थे।
  - ब्राह्मणों में समूहीकृत समय के साथ उच्च जातियों को इसी तरह से अन्य समूहों का भी भारत में विभिन्न जातियों के लिए अग्रणी बनाया गया।
- **विकासवादी सिद्धांत**
  - जाति व्यवस्था सिर्फ अन्य सामाजिक संस्था की तरह है जो विकास की प्रक्रिया के माध्यम से विकसित हुई है।

भारत में जाति व्यवस्था का महत्व और इसके बदलते परिदृश्य

- हालाँकि समय के साथ कई चीजें बदल गई हैं और जाति व्यवस्था भी बदल चुकी है लेकिन फिर भी यह विवाह और धार्मिक पूजा जैसी जीवन की प्रमुख घटनाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।
- भारत में कई स्थान आज भी हैं जहाँ शूद्रों को मंदिर में प्रवेश करने और पूजा करने की अनुमति नहीं दी जाती है।
  - जबकि क्षत्रिय और वैश्य जाति इस संबंध में पूर्ण अधिकारों का आनंद उठाते हैं।
- जाति व्यवस्था समस्याग्रस्त हो जाती है जब इसका उपयोग समाज की रैंकिंग के लिए किया जाता है और साथ ही जब यह प्राकृतिक और मानव निर्मित संसाधनों की असमान पहुँच की अगुवाई करता है।
- शहरी मध्यवर्गीय परिवारों में जाति व्यवस्था महत्वपूर्ण नहीं है लेकिन यह विवाह के दौरान एक भूमिका निभाती है। यहाँ तक कि इसमें और भी समायोजन किए जाते हैं।
- आजादी के साथ-साथ स्वतंत्रता के बाद भी भारत में जाति-आधारित असमानताओं को खत्म करने के लिए कई आंदोलन और सरकारी कार्रवाइयाँ भी हुईं।
  - निम्न जातियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए, गाँधीजी ने निम्न जाति के लोगों के लिए 'हरिजन' शब्द (भगवान के लोगों) का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था।
    - लेकिन यह शब्द सार्वभौमिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया था।

- उन्होंने एक ही उद्देश्य के लिए एक अलग समूह बनाने की बजाय निम्न जाति के लोगों को सुधारने के लिए प्रोत्साहित भी किया।
- ब्रिटिश सरकार भी 400 समूहों की एक सूची के साथ आई थी जिन्हें अछूत के रूप में माना जाता था।
- बाद में इन समूहों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के रूप में जाना जाता था।
  - 1970 के दशक में अछूतों को दलित कहा जाने लगा।

- 19वीं सदी के मध्य में ज्योतिबा राव फुले ने निम्न जाति के लोगों की स्थिति का उत्थान करने के लिए दलितों के लिये आंदोलन शुरू किया।
  - निम्न जाति के लोगों का समर्थन करने के लिए डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का योगदान बहुत महत्वपूर्ण था।
  - उन्होंने 1920 और 1930 के बीच एक महत्वपूर्ण दलित आंदोलन शुरू किया।
  - उन्होंने भारत में दलितों की स्थिति सुधारने के लिए स्वतंत्र भारत में आरक्षण की एक प्रणाली भी बनाई और उनके नेतृत्व में छह लाख दलितों ने बौद्ध धर्म को भी अपनाया था।
- लेकिन आधुनिक भारत में अलग-अलग लोगों के बीच संबंध पूरी तरह से सुगम नहीं हो पाये हैं।
  - जैसा कि अलग-अलग मान के बावजूद हर कोई एक जगह पर भोजन कर सकता है, पर्यटन स्थल पर जा सकता है लेकिन फिर भी लोग अंतर्जाति विवाद के खिलाफ हैं।
  - व्यवसाय क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है क्योंकि अब यह जाति तक सीमित नहीं है।
- हालाँकि समय के साथ कई परिवर्तन होते हैं लेकिन फिर भी भारत को आज भी इस मुद्दे पर कार्य करने की आवश्यकता है ताकि जाति पर आधारित हमारी असमानता को समाज से हमेशा के लिये उखाड़ फेंका जा सके।

जाति की विशेषताएँ

जाति की प्रमुख विशेषताएँ

- **एन० के० दत्त ने जाति व्यवस्था के निम्नलिखित छह लक्षणों का उल्लेख किया है**
  1. जाति का कोई भी सदस्य **अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं** कर सकता है।
  2. प्रत्येक जाति में **भोजन और खान-पान सम्बन्धी कुछ-न-कुछ प्रतिबन्ध** होते हैं जो सदस्यों को अपनी जाति से बाहर भोजन करने पर रोक लगाते हैं। ये प्रतिबन्ध प्रत्येक जाति में लागू होते हैं।
  3. प्रायः जाति के **पेशे निश्चित** होते हैं।
  4. सभी जातियों और उप-जातियों में एक **ऊँच-नीच या संस्तरण की व्यवस्था** पाई जाती है जिसमें ब्राह्मण जाति का स्थान सर्वोपरि है और उसे सर्वोच्च मान्यता प्राप्त है।
  5. जन्म के साथ ही व्यक्ति की **जाति का निश्चय जीवन भर के लिए** हो जाता है। केवल जाति के नियमों के विपरीत कार्य करने पर ही उसे जाति से निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त, एक जाति से दूसरी जाति में जाना सम्भव नहीं है।
  6. सम्पूर्ण **जाति व्यवस्था ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर** निर्भर है।
- **डॉ. घुर्ये ने विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया है-**
  - खानपान व सामाजिक सहवास पर अन्य जाति में प्रतिबन्ध होता है।
  - विवाह पर प्रतिबंध होता है।
  - व्यवसाय का स्वतंत्र चुनाव नहीं किया जा सकता।
  - संस्तरण।
  - समाज का खण्डात्मक विभाजन।
  - सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यताओं पर विशेषाधिकार
- **एम० एन० श्रीनिवास** के अनुसार पिछली शताब्दियों के दौरान प्रचलित जाति के लक्षणों को **निम्नलिखित नौ शीर्षकों** के अन्तर्गत वर्णित किया जा सकता है
  1. संस्तरण अथवा पदानुक्रम,
  2. अन्तः विवाह तथा अनुलोम विवाह,
  3. व्यावसायिक सम्बद्धता,
  4. भोजन, जलपान एवं धूम्रपान पर प्रतिबन्ध,
  5. प्रथा, भाषा एवं पहनावे का भेद,
  6. अपवित्रीकरण,
  7. संस्कार एवं अन्य विशेषाधिकार तथा निर्योग्यताएँ,
  8. जाति संगठन तथा
  9. जाति गतिशीलता

जाति प्रथा के गुण/कार्य

- **सामाजिक स्थिति का निर्धारण करती है**
  - जाति व्यवस्था के आधार पर जन्म से ही व्यक्ति को निश्चित स्थिति प्राप्त हो जाती है।
  - यदि वह जाति के स्वीकृत व्यवहार संबंधी नियमों का उल्लघंन न करें तो सम्पत्ति, निर्धनता, सफलता, असफलता व्यक्ति के गुण-दोष आदि उसे इस स्थिति से वंचित नहीं कर सकते ।
  - जाति व्यवहार संबंधी नियमों का उल्लंघन करने पर उसे जाति से निष्कासित कर दिया जाता है।
- **सामाजीकरण करती हैः**
  - जाति व्यक्ति के खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन आदि को निर्धारित करती हैं।
  - जाति की प्रेरणा से व्यक्ति अपने आपको समाज के अनुसार बना लेता है।।
- **वैवाहिक समूह निश्चित करती है**
  - प्रत्येक जाति अपने सदस्य के लिए वैवाहिक समूह की सीमा निश्चित करती है।
  - वह अपने सदस्यों को यह बताती है कि वे किन लोगों के साथ किस समूह में विवाह कर सकते हैं।
  - जाति विवाह के सम्बन्ध में अनेक प्रतिबन्ध भी लगाती है जिनका पालन व्यक्ति को अनिवार्य रूप से करना पड़ता है।

- वैवाहिक समूह निश्चित करने में व्यक्ति की अपनी इच्छा कोई काम नहीं करती, जाति स्वयं इस कार्य को पूरा करती है।

- **पेशों का निर्धारण**
  - पेशों के निर्धारण में जाति प्रथा का योगदान महत्वपूर्ण है।
  - बेकारी की समस्या से ग्रसित होकर व्यक्ति आत्महत्या या अपराधों को स्वीकार करता है।
    - लेकिन जाति व्यवस्था के कारण इस समस्या का निराकरण स्वतः ही हो जाता है।
  - प्रत्येक व्यक्ति अपेक्षित कार्यों के सम्पादन में ही विश्वास करता है तथा निर्धारित व्यवसाय में ही उन्नति करता है।
- **व्यक्तियों के व्यवहार पर नियंत्रण**
  - प्रत्येक जाति के अपने कुछ निर्धारित नियम होते हैं और प्रति होते है ।
  - इनका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है।
  - इनकी उपेक्षा करने पर जाति के वजा अपनी जाति से बहिर्गमन कर सकते हैं।
    - अतः ऐसी स्थिति से व्यक्ति सदैव बचना चाहता है जिससे उनके आचरण नष्ट होते हैं तथा अनाचार व दुर्व्यवहार होने की सम्भावना नहीं रहती।
- **रक्त की शुद्धता बनाए रखना**
  - रक्त की शुद्धता बनाये रखने में भी जाति का बहुत योगदान है।
  - अपनी ही जाति में विवाह करता है जिससे अपने रक्त में वर्ण संकरता नहीं आ सकती।
  - यदि दूसरी जाति में विवाह करता है तो दो जातियों से उत्पन्न सन्तान वर्ण संकर होगी तथा रक्त में विभिन्नता भी उत्पन्न हो जाएगी।
- **समाज के विकास में सहायक**
  - सामाजिक परम्पराओं, प्रथाओं , रीति-रिवाजों आदि की निरंतरता के कायम रखने में जाति प्रथा ने सहयोग दिया है।
  - सामाजिक आदर्श मापदण्डों के पालन न करने की स्थिति में व्यक्ति को दण्ड का भागीदार होना पड़ता था।
  - प्रत्येक जाति के साथ एक श्रम का प्रकार जुड़ा हआ है, क्योंकि समाज का अस्तित्व श्रम के सभी प्रकारों के परस्पर संयोजन में निहित है
    - अतः सभी जातियों को विविध श्रम प्रकारों के साथ जुड़ा रहने के कारण परस्पर सहयोगी रहना पड़ता है।
- **धार्मिक व्यवस्था व संस्कृति की रक्षा**
  - प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन में धार्मिक तत्वों को स्थान नहीं दे सकता था।
  - जातीय धर्म के पालन में तत्परता बरती जाती थी।
  - ऐसा न किए जाने पर व्यक्ति दण्ड का भागीदार होता था।
  - प्रत्येक जाति अपनी धार्मिक विधियों की रक्षा करती थी।
  - वे अपने तरीकों से देवी-देवताओं की पूजा अर्चना किया करती थीं।
  - हट्टन ने लिखा है कि प्रत्येक जाति की अपनी एक सामान्य संस्कृति रही है। जिसके अन्तर्गत उस जाति विशेष का ज्ञान व्यवहार, कार्यकुशलता आदि आते हैं।
  - वे सब जाति के सदस्यों में पीढ़ी अपने बुजुर्गों से इस बात को सीखते है जिससे जाति की संस्कृति स्थिर रहती है।
- **मानसिक व सामाजिक सुरक्षा**
  - जाति अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा, एक स्थिर सामाजिक पर्यावरण प्रस्तुत कर सकती है।
  - व्यक्ति अपनी स्थिति, व्यवसाय व जीवन साथी चुनने से मानसिक चिन्ता से मुक्त रहता है उसे स्वतः ही जाति ये सब चीजें प्रदान कर देती है।
  - जाति सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का कार्य भी करती है।
  - प्रत्येक जाति का अपना संगठन होता है जो लंगड़ों, अनाथों, बीमारों, अन्धों, वृद्धों और विधवाओं को सुरक्षा प्रदान करती हैं।
  - असहाय अवस्था में जाति इन व्यक्तियों को अपना सहयोग प्रदान करती हैं।
  - व्यक्ति पर किसी भी प्रकार का संकट क्यों न हो, जाति हमेशा उसे दूर करने में तत्पर रहती है।
  - इस प्रकार जाति का संगठन व्यक्ति की मानसिक व सामाजिक परेशानियों को दूर कर सुरक्षा प्रदान करता हैं।

जाति प्रथा के दोष/चुनोतियाँ

- जिस तरह जाति समाज की सेवा कर समाज को समुन्नत किया हैए उसी तरह दूसरी ओर अपकार की मात्रा भी इतनी बढ़ गई।
- **इस प्रथा की विघटनकारी प्रकृति निम्नानुसार हैः**
  - **सामाजिक क्षेत्र में**
    - सामाजिक क्षेत्र में जाति प्रथा मानव को तोड़ती है।
    - जाति की विभिन्नता होने के कारण उच्च वर्ग व निम्न वर्ग के मानवों में आपस में अस्पृश्यता की भावना पैदा हो गई।
    - मानवता के नाम पर कलंक लग गया है।
    - मानव-मानव से घृणा करने लगा है।
    - निम्न वर्ग में जैसे-चमार, कुम्हार, खटीक इत्यादि जातियों को गाँव की सीमा से बाहर रखा जाता है।
    - वे वेदों, उपनिषदों, ग्रन्थों का अध्ययन व मन्त्रों का उच्चारण नहीं कर सकते।
    - मानवीय आदर्शों की प्रकृति में नहीं आ सकते ।
    - ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति के सदस्यों ने निम्न वर्गीय मनुष्यों पर अवर्णनीय अत्याचार किए।
      - ✓ उनके लिए मंदिरों के, धर्मशालाओं के द्वार बन्द थे ।
      - ✓ कुएँ पर चढ़ना तथा स्वच्छ वस्त्र पहनना एक अपराध था।
      - ✓ प्रत्येक त्यौहार को खुशी से नहीं मनाने दिया जाता था।
      - ✓ वह वर्ग निम्न स्तर का ही कार्य कर सकता था।

- वेदों तथा उपनिषदों में स्त्रियों को पात्र नहीं माना जाता था, परन्तु जाति के विकास के दौरान स्त्रियों को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सभी अधिकारों से वंचित रखा जाता था।
- बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, मृत्युभोजों और अनेक समस्याओं के जन्म के पीछे जाति प्रथा का योगदान रहा है।
- जाति से बहिर्गत होने के भय से व्यक्तियों ने आदर्शविहीन नियमों व रीति रिवाजों का पालन किया।
  - ✓ ये परम्पराएँ आज तक भी बनी हुई है।
- परन्तु आधुनिक युग में शिक्षित वर्ग ने कुछ समस्याओं का समाधान कर दिया है।
- नियमानुसार बाल विवाह प्रथा, दहेज प्रथा एक अपराध है।
- सरकार द्वारा निम्न वर्ग का प्रत्येक जगह स्थाई व निश्चित कोटा निर्धारित कर दिया गया है।
  - ✓ अतः शहरों में तो नहीं परन्तु गाँवों में आज भी ये सामाजिक समस्याएँ देखने को मिलती हैं।

○ **आर्थिक क्षेत्र में**

- जाति श्रमिक गतिशीलता में बाधा पहुँचाती है।
  - ✓ अर्थात व्यक्तियों के पेशे बदलने पर रोक लगाती है।
  - ✓ इससे व्यक्ति यदि किसी अन्य व्यवसाय की जानकारी रखता हो तो भी वह अपना ही व्यवसाय करेगा चाहे उसमें फायदा हो या नुकसान।

○ **श्रमिक की कार्य-कुशलता में बाधा पहुँचाती है**

- अनेक व्यक्तियों को अपने परम्परागत पेशे अच्छे नहीं लगते और वे नये पेशे करना चाहते हैं, परन्तु वे अपने जातीय व्यवसाय को परम्परा के कारण नहीं बदल सकते थे।
- निष्कर्षतः श्रमिक की कार्यकुशलता का हास होता था परंतु आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति हर प्रकार से स्वतंत्र है।
- वह किसी भी क्षेत्र में कुछ भी व्यवसाय कर अपना आर्थिक स्तर बढ़ा सकता है।
- सांस्कृतिक क्षेत्र में जाति अवरोधक का कार्य करती थी।
  - ✓ उसी व्यक्ति को समान रूप से सांस्कृतिक उन्नति करने का अधिकार नहीं था।
  - ✓ सांस्कृतिक कार्यक्रम, मनोरंजन कराने का अधिकार केवल, राजाओं, भाटों व चारणों को ही था।
  - ✓ अन्य वर्ग का यदि व्यक्ति कलाकार बनने की क्षमता रखता था तो भी वह मनोरंजन नहीं कर सकता था, करता तो जाति से निष्कासित कर दिया जाता था।
  - ✓ परन्तु आज के युग में मनुष्य सभी क्षेत्र में स्वतंत्र है।

○ **धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में**

- धार्मिक क्षेत्र में भी जाति का कार्य विघटनकारी रहा था।
- उच्चवर्गीय ब्राह्मण ही वेदों का पठन-पाठन कर सकता था तथा ब्राह्मणों, वैश्यों व क्षत्रियों के लिए ही मंदिरों का दरवाजा खुला था।
- ब्राह्मणों को ही ईश्वर दर्शन देता था, स्वर्ग की सीटें भी ब्राह्मणों के लिए निश्चित थी।
- निम्न वर्ग द्वारा ईश्वर की पूजा, अर्चना-मनन व ध्यान करना एक अपराध माना जाता था।
- ऐसा करने पर उसे कोड़ों की मार का सामना करना पडता था।
  - ✓ परन्तु आज प्रत्येक वर्ग अपनी क्षमता के अनुसार ईश्वर की आराधना कर सकता है।
- जाति ने राजनीतिक क्षेत्र में भी समाज की हानि पहुँचाई थी।
- अलग जातियों के अलग-अलग गुट थे।
- क्षत्रियों का शासन था।
- क्षत्रियों के हाथ में ही शासन की बागडोर थी।

जाति प्रथा के कार्य एवं चुनोतियाँ

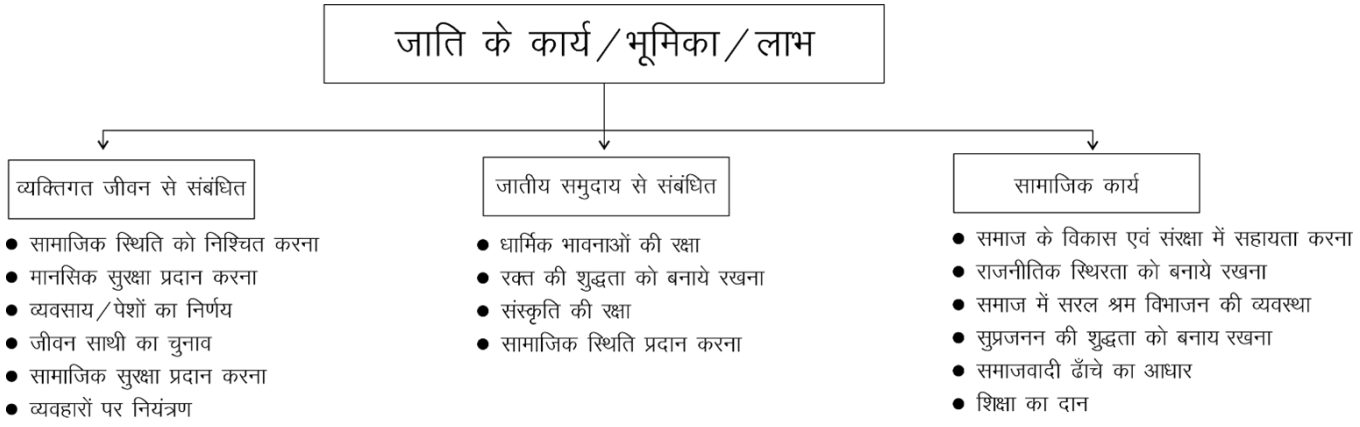

जाति प्रथा की चुनौतियाँ/हानियाँ/अवगुण

- राधाकृष्णन के अनुसार - दुर्भाग्यवश वही जाति प्रथा जिसे सामाजिक संगठन को नष्ट होनें से रक्षा करने के साधन के रूप में विकसित किया गया था, आज उसी की उन्नति में बाधक बन रही है

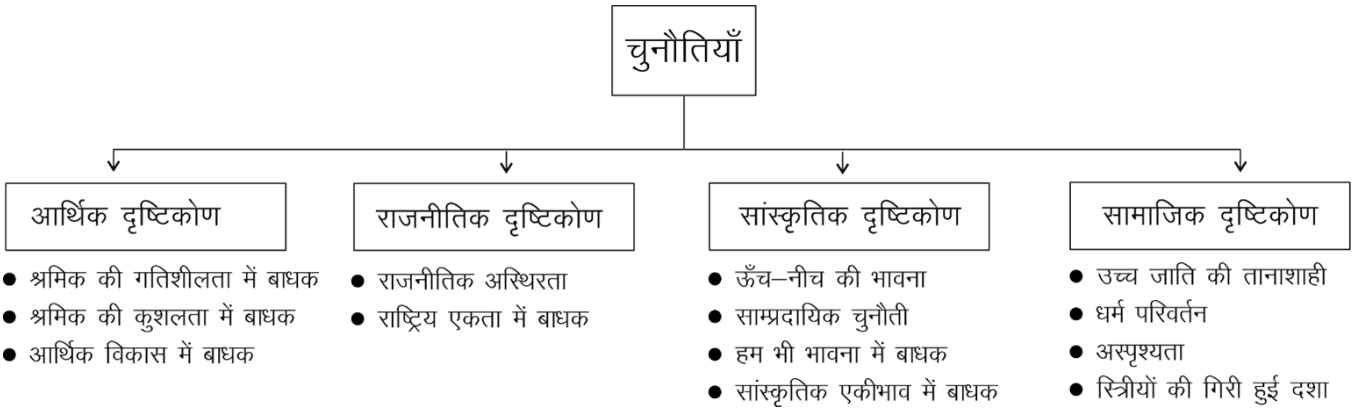

प्रभुजाति की अवधारणा

- जाति प्रधान भारतीय समाज में ग्रामीण शक्ति संरचना के विश्लेषण के क्रम में श्रीनिवास ने प्रभुजाति की अवधारणा को प्रस्तुत किया है।

प्रभवजाति:

- 20वीं शताब्दी में प्रभवजाति की अवधारणा ग्रामीण अध्ययनों के परिणामस्वरूप हमारे सामने आयी है।
- इसका मतलब है कि गाँव की कछ जातियाँ आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से प्रभावी हो जाती हैं और वे एक क्षेत्र विशेष में महत्वपूर्ण समझी जाती हैं।
- सामान्यतया **प्रभव जाति वह है, जिसके पास** –
  - अपने क्षेत्र में कृषि भूमि अधिक होती है, दूसरे शब्दों में यह जाति आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होती है।
  - प्रभव जाति राजनैतिक रूप में यानी वोट बैंक की तरह शक्तिशाली होती है।
  - इस जाति की जनसंख्या अधिक होती है।
  - इस जाति का कर्मकाण्ड में ऊँचा स्थान होता है।
  - इस जाति में अंग्रेजी माध्यम से पढ़े-लिखे लोग होते हैं।
  - यह जाति कृषि के क्षेत्र में अग्रणी होती है।
  - यह जाति शारीरिक दृष्टि से बाहुबलियों की होती है।
- यह होते हुए भी प्रभव जाति का दायरा केवल उच्च जातियों तक ही नहीं होता। प्रभव जाति निम्न जातियों में भी पायी जाती है।

जजमानी प्रथा का अर्थ एवं परिभाषा

- जजमानी-प्रथा का अर्थ उस ग्रामीण व्यवस्था से है जिसमें जातियाँ परस्पर सेवाओं का विनिमय करती है।
- विलियम बाइजर ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक "**दा हिन्दू जजमानी सिस्टम**" में इस प्रथा का उल्लेख किया है-
- आस्कर लेविस ने "**विलेज लाइफ इन नार्दरन इण्डियाँ**" कृति में जजमानी प्रथा के विषय में लिखा हैं - " इस व्यवस्था में प्रत्येक जाति-समूह से अन्य जातियों के परिवारों के लिए कुछ विशेष निश्चित सेवाओं की आशा की जाती है।
- इसका अर्थ यह है कि गाँव में सभी जातियाँ अपना-अपना व्यवसाय करती है, खाती लकड़ी का सामान बनाता है, नाई बाल काटता है, लुहार लोहे के औजार बनाता है, किन्तु ये लोग अपनी सेवाएँ केवल उन्हीं परिवारों को प्रदान करते हैं जिन परिवारों से उनके सम्बन्ध वंश परम्परा से चले आ रहे है बदले में वे परिवार भी उन सेवाओं के बदले उन्हें कुछ पारितोषक प्रदान करते है, जैसे लुहार, तेली, धोबी, नाई आदि ने किसान को अपनी-अपनी सेवाएं प्रदान की है तो किसान भी अपनी फसल के काटने के समय उनकी सेवाओं के आधार पर उन्हें निश्चित मात्रा में अनाज दे देता है।
- जजमानी प्रथा में जिस परिवार की सेवा की जाती है वह परिवार या उसका मुखिया सेवा करने वाले का **जजमान** कहलाता है और "सेवा देने वाला" व्यक्ति "**काम करने वाला या कमीन**" कहलाता है उदाहरण के लिए किसान को लुहार, धोबी, तेली, नाई आदि अपनी सेवाएँ देते है तो किसान जजमान है और सेवा देने वाले लोग कमीन है।

जजमानी व्यवस्था का महत्व अथवा लाभ

सामाजिक तथा सामुदायिक महत्व	व्यावसायिक क्षेत्र में महत्व	विधि प्रकार के महत्व
• वैयक्तिक सम्बन्ध के क्षेत्र में • प्रकार्यात्मक कार्यो में सन्तुलन • सामाजिक सुरक्षा की भावना • जातिवाद की कडुवाहट में कमी • सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में • ग्रामीण समुदाय में एकता	• वंशानुगत व्यवसायों की सुरक्षा • जीविका के साधन के रूप में • व्यावसायिक प्रतियोगिता और संघर्ष का अभाव • आर्थिक सुरक्षा	• अनुशासन को प्रोत्साहन • ग्राम समुदाय में एकता के दर्शन • विभिन्नता में एकता • संतोष की भावना • मानसिक सुरक्षा • राजनीतिक सुदृढ़ता में सहायक

जजमानी व्यवस्था के विघटन के कारण

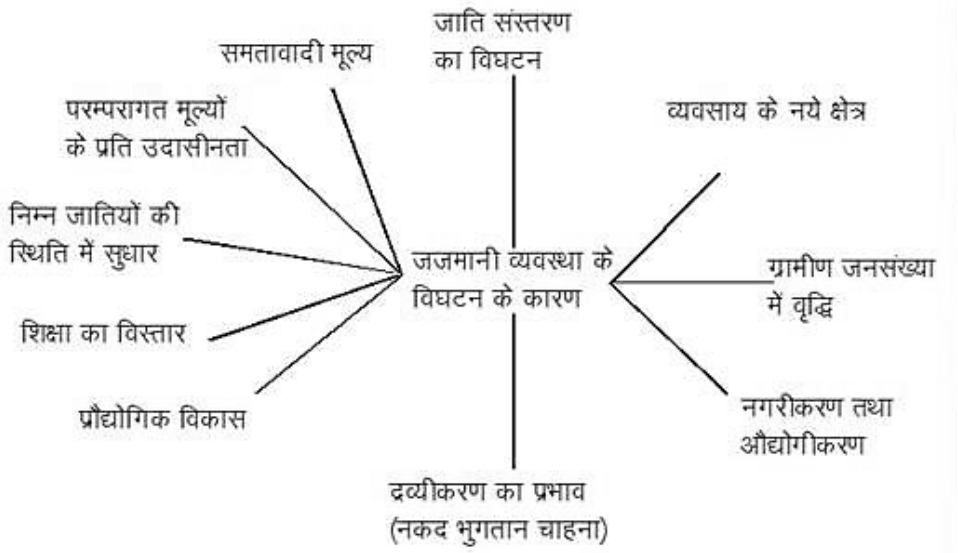

जजमानी प्रथा के दोष

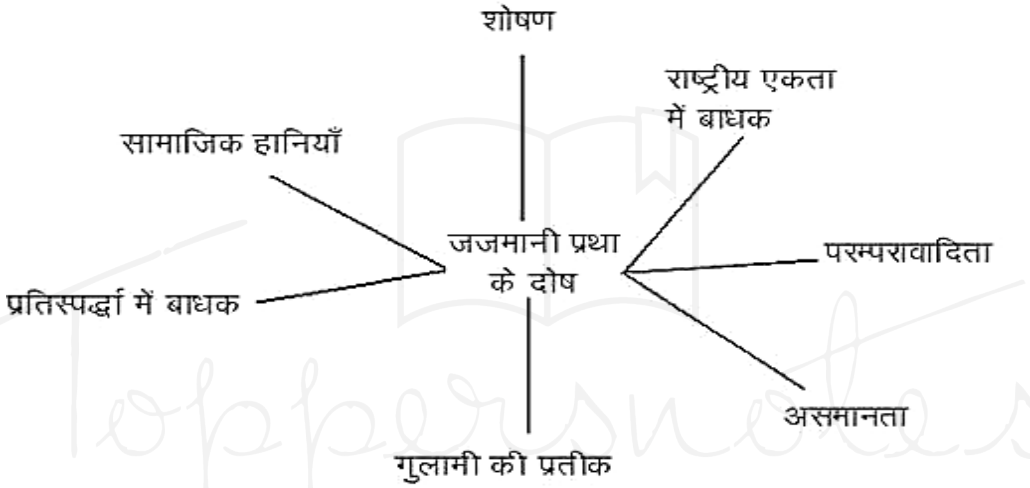

वर्ण तथा जाति में अन्तर

- साधारणतया जाति और वर्ण को समान ही अर्थ वाला माना जाता है।
- श्री होकाटे ने भी इन दोनों में समानता को ही प्राप्त किया है।
  - लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है।
- श्री हट्टन के अनुसार दोनों व्यवस्थाएँ एक - दूसरे से काफी भिन्न है।
- वर्ण को रंग और वरण करने के अर्थों में लिया गया हैं, जबकि जाति एक रूढ़िग्रस्त बन्धन मुक्त प्रणाली है।
- कुछ लोग वर्ण और जाति को ही मानते हैं।
- किन्तु वास्तव में दोनों में निम्नानुसार अन्तर हैं:
  - जन्म से प्राप्त होने वाली जाति-के अर्थ में जहाँ शाब्दिक समानार्थकता है वहाँ भी 'जाति' शब्द व्यापक अर्थ का बोधक है और वर्ण शब्द व्यापक अर्थ का सूचक हैं, जो ''चार वर्ण क्षत्रिय जाति'' लोकोक्ति में स्पष्ट है।
  - इसके अतिरिक्त नमूने भी चार वर्णों और शक्तिवान जातियों का उल्लेख किया है।
  - वे एच. हट्टन वर्ण को जाति से पृथक् मानते हैं।

वर्ग व्यवस्था

- समाज में भौतिक संस्कृति की वृद्धि तथा औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप समाज का स्तरीकरण रक्त की शुद्धता एवं जन्म के आधार पर न होकर **सामाजिक स्थिति, राजनीतिक स्थिति एवं आर्थिक स्थिति** के आधार पर या तीनों के सम्मिलित रूप से होता है।
- वर्ग व्यवस्था भी सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रकार है।
- चूँकि वर्ग **अर्जित पदों को महत्त्व** देता है तथा इसमें **मनुष्य अपनी योग्यता के आधार पर** उच्च पद को ग्रहण कर सकता है और उच्च वर्ग का सदस्य हो सकता है।
- यह व्यवस्था **जाति के विपरीत खुली एवं लोचपूर्ण** व्यवस्था है
- इसमें परम्परागत कठोरता नहीं पाई जाती है।
- **कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर** आदि विचारकों का मत है कि वर्ग मुख्यतः **आर्थिक अन्तर पर** आधारित हैं।
- कार्ल मार्क्स की मान्यता है कि प्राचीन युग से ही **समाज आर्थिक आधार पर दो वर्गों** में बँटा हुआ है।
- पहले **जब कृषि युग** था तब दो प्रमुख वर्ग थे-
  - **जमींदार तथा कृषक**,
  - **सामन्त तथा दास,**

- **औद्योगीकरण** के बाद- **पूँजीपति तथा श्रमिक।**
- पूँजीपति वर्ग को लें अथवा जमींदार या सामन्त वर्ग को, इनके पास भौतिक सम्पन्नताएँ अधिक थीं। वे मालिक रहे हैं और कृषक, दास एवं श्रमिक वर्ग के लोग प्राचीन युग से ही अच्छी कोटि की सुविधाओं से वंचित रहे हैं।

अर्थ एवं प्रमुख परिभाषा

- **सामाजिक वर्ग** सामाजिक स्तरीकरण का ही एक स्वरूप है। यह मुख्यतः आर्थिक समानताओं एवं समान जीवन के अवसरों पर आधारित समूह है।
- अन्य शब्दों में, सामाजिक वर्ग व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसके सदस्यों की आर्थिक स्थिति, जीवन-यापन हेतु उपलब्ध अवसर एवं अन्य विशेषताएँ समान होती हैं तथा जिनके सदस्यों में अपने समूह के प्रति चेतना पाई जाती है।
- **ऑगबर्न एवं निमकॉफ (Ogburn and Nimkoff) के अनुसार-"**एक निश्चित समाज में मुख्य रूप से **एक ही पद वाले व्यक्तियों के समूह** को सामाजिक वर्ग कहा जाता है।"
- **मैकाइवर एवं पेज (Maclver and Page) के अनुसार**-"सामाजिक वर्ग एक समुदाय का वह भाग है जो **सामाजिक स्थिति के आधार पर शेष भाग से पृथक्** दृष्टिगोचर होता है।
- **जिसबर्ट (Gisbert) के अनुसार-"**एक सामाजिक वर्ग व्यक्तियों का समूह अथवा विशेष श्रेणी है, जिसका **समाज में एक विशेष पद** होता है। यह विशेष पद ही अन्य समूहों से उनके सम्बन्धों को स्थायी रूप से निर्धारित करता है।"
- **लेपियर (LaPiere) के अनुसार-"**सामाजिक वर्ग एक **सांस्कृतिक समूह** है जिसे सम्पूर्ण जनसंख्या में एक **विशिष्ट स्थिति या पद दिया** जाता है।"
- **बॉटोमोर (Bottomore) के अनुसार**-"सामाजिक वर्ग तथ्यत: कानूनी एवं धार्मिक रूप से परिभाषित एवं मान्य समूह होते हैं जोकि बन्द नहीं हैं अपितु खुले हैं। उनका आधार निर्विवाद रूप से आर्थिक है लेकिन वे आर्थिक समूहों से अधिक होते
- **उपर्युक्त परिभाषाओं** से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक वर्ग **एक समान स्थिति** वाले व्यक्तियों का एक समूह है। इससे अभिप्राय **सामाजिक संस्तरण** की उस मुक्त व्यवस्था से है जो योग्यता, शिक्षा तथा आर्थिक स्थिति पर आधारित हो सकती है।

वर्ग की प्रमुख विशेषताएँ

1. **निश्चित संस्तरण होता** है अर्थात वर्ग में कोई उच्च और कोई नीचा होता है
2. **वर्ग की सर्वव्यापकता** - वर्ग मानव समाज की एक सर्वव्यापी प्रघटना है।
   - मार्क्स के अनुसार वर्ग व्यवस्था प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल में भी किसी-न-किसी रूप में सदैव विद्यमान रही है।
   - यद्यपि इन्होंने वर्गविहीन समाज की कल्पना की थी, परन्तु अधिकांश विद्वान् वर्गविहीन समाज को केवल एक दिवास्वप्न मानते हैं क्योंकि मानव जीवन के इतिहास में इसकी उपलब्धि सम्भव नहीं है।
3. **वर्ग चेतना**-वर्ग चेतना के कारण वर्ग-विशेष के सदस्यों में समानता की भावना प्रोत्साहित होती है व उस वर्ग को स्थायित्व प्राप्त होता है।
4. **अर्जित सदस्यता**-वर्ग की सदस्यता जन्म द्वारा नहीं वरन् योग्यता और कुशलता द्वारा अर्जित होती है।
5. **मुक्त व्यवस्था-**
   - वर्ग जाति के समान बन्द व्यवस्था न होकर मुक्त व्यवस्था है।
   - किसी व्यक्ति का वर्ग उसकी परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित भी हो सकता है।
   - इसी गतिशीलता के कारण इसे मुक्त व्यवस्था कहा गया है।
   - प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर उपलब्ध हैं जिससे कि वह अपने गुणों, योग्यता तथा क्षमता के आधार पर उच्च वर्ग का सदस्य बन सके।
   - उदाहरण के लिए-एक सामान्य श्रमिक अपनी मेहनत, लगन व योग्यता से उसी फैक्टरी का निदेशक तक बन सकता है जिसमें कि वह काम करता है।
6. **सीमित सामाजिक सम्बन्ध**–प्रत्येक वर्ग के सदस्य अपने ही वर्ग के सदस्यों से सम्बन्ध रखते हैं। इसमें केवल अपने वर्ग के सदस्यों के साथ सम्पर्कों को प्राथमिकता दी जाती है।
7. **आर्थिक आधार**-वर्ग निर्माण में आर्थिक आधार को ही प्रधानता दी जाती है।
   - विशेषकर मार्क्स ने वर्ग निर्माण में आर्थिक आधार को प्रधानता दी है।
   - सामान्यतः समाज **तीन प्रमुख वर्गों** में विभक्त होता है-
     a. उच्च वर्ग,
     b. मध्यम वर्ग तथा
     c. निम्न वर्ग।
   - इन वर्गों को **पुनः तीन वर्गों में** विभाजित किया जा सकता है-उच्च, मध्यम तथा निम्न।
   - **उदाहरणार्थ, उच्च वर्ग को** -उच्च-उच्च वर्ग, मध्यम-उच्च वर्ग एवं निम्न-उच्च वर्ग;
     मध्यम वर्ग को -उच्च-मध्यम वर्ग. मध्यम-मध्यम वर्ग एवं निम्न-मध्यम वर्ग तथा
     निम्न वर्ग को -उच्च-निम्न वर्ग, मध्यम-निम्न _ वर्ग एवं निम्न-निम्न वर्ग में विभाजित किया जा सकता है।
8. **सामान्य जीवन** -यद्यपि प्रत्येक वर्ग के सदस्य को किसी भी प्रकार के जीवन यापन की स्वतन्त्रता होती है।
9. **सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण** -वर्ग सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण करता है। व्यक्ति जिस वर्ग का सदस्य होता है उसी वर्ग के अनुरूप समाज में उसकी प्रस्थिति निर्धारित हो जाती है। परन्तु यह प्रस्थिति स्थायी नहीं है, क्योंकि मुक्त व्यवस्था होने के कारण स्वयं वर्ग की सदस्यता व्यक्ति की योग्यता के आधार पर परिवर्तित हो सकती है।

वर्ग का प्रकार्य :

- जाति असमानता और लैंगिक असमानता को कम करता है
- समानता और स्वतंत्रता जैसे आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्य को बढ़ावा देता है ।

- स्वस्थ प्रतिस्पर्धा और नवाचार को बढ़ावा देता है
- आधुनिकीकरण की जड़ें गहरी करता है
- लोकतंत्र को और जीवंत बनाता है।
- आर्थिक विकास को तीव्र करता हैं।
- सामाजिक प्रगति सुनिश्चित करता है

चुनौतियां:

- बेरोजगारी और असतत विकास को बढ़ावा देता है
- दिशाहीन पश्चिमीकरण को बढ़ावा देता है
- असमानता की जड़ें गहरी करता है (सामाजिक आर्थिक)
- डिजिटल डिवाइड बढ़ावा देता है
- वर्ग जरूरत को लालच में इच्छा को आर्थिक इच्छा में बदला रहा है इसने मानव को आर्थिक मानव बनाया है
- भ्रष्टाचार को बढ़ाना और भ्रष्टाचार की सामाजिक स्वीकृति को बढ़ावा दिया है
- भौतिकवाद, व्यक्तिवाद, उपभोक्तावाद मूल्यों को बढ़ावा देता है जो नैतिक पतन को बढ़ावा देता है।
- पर्यावरण संकट को बढ़ावा मिला है।

जाति और वर्ग में अंतर

जाति	वर्ग
1. जाति जन्म पर आधारित एक सामाजिक व्यवस्था है।	1. वर्ग एक कर्म पर आधारित सामाजिक अवधारणा है ।
2. जाति की सदस्यता प्रदत्त होती है जिसे व्यक्ति को प्राप्त करने के लिए मेहनत नहीं करनी पड़ती, वह उसे जन्म के आधार पर स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।	2. वर्ग की सदस्यता अर्जित होती है, जिसे व्यक्ति को प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास करने पड़ते हैं। वह व्यक्ति को उसके कर्मों के आधार पर प्राप्त होती हैं।
3. जाति में गतिशीलता का अभाव पाया जाता है।	3. वर्ग में गतिशीलता व्याप्त होती है।
4. जाति एक स्थिर अवधारणा है।	4. वर्ग एक अस्थिर अवधारणा है।
5. जाति एक बंद वर्ग या व्यवस्था है, जिसे व्यक्ति बदल नहीं सकता है।	5. वर्ग एक मुक्त या खुली व्यवस्था है जिसे व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार बदल सकता है।
6. जाति समाज की एक अनौपचारिक व्यवस्था है।	6. वर्ग समाज की एक औपचारिक व्यवस्था है।
7. जाति में सदस्यों के संबंध अनौपचारिक पाए जाते हैं।	7. वर्ग में सदस्यों के संबंध औपचारिक ही पाए जाते हैं ।
8. जाति की अपनी एक पंचायत व्यवस्था होती है।	8. वर्ग की अपनी कोई पंचायत नहीं होती है।
9. जाति के सदस्यों में हम की भावना पायी जाती है जो उन्हें आत्मीयता, प्रेम आदि की अनुभूति कराती है।	9. वर्ग में अहम् या मैं की भावना पायी जाती है। जिससे लोग आपस में एक दूरी बनाकर रखते हैं।
10. जाति के सदस्यों पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध व नियम पाए जाते हैं।	10. वर्ग के सदस्यों पर कोई प्रतिबंध नहीं पाया जाता है और न ही कोई नियम ।

जाति तथा प्रजाति में अंतर :

जाति व प्रजाति में प्रमुख अंतर निम्न प्रकार से है :

जाति	प्रजाति
• जाति एक जन्म पर आधारित सामाजिक अवधारणा है।	• प्रजाति शारीरिक लक्षणों पर आधारित एक प्राणिशास्त्रीय अवधारणा है।
• जाति धर्म से संबंधित होती है।	○ प्रजाति का धर्म के साथ कोई संबंध नहीं पाया जाता है।
• जाति जन्म व व्यवसाय के आधार पर निर्धारित होती है।	• प्रजाति शारीरिक गुण जैसे-बाल, बनावट या रंग के आधार पर निर्धारित होती है।
• जाति के सदस्यों को शारीरिक लक्षणों के आधार पर अलग नहीं किया जा सकता है।	• प्रजाति को शारीरिक लक्षणों के आधार पर अन्य प्रजाति के सदस्यों से अलग किया जा सकता है।
• जाति सामाजिक विषमता का आधार है।	• प्रजाति सामाजिक विषमता का आधार नहीं है।
• जाति के साधनों के कार्य, स्थिति व पद निश्चित होते है।	• प्रजाति में सदस्यों के कार्य, पद व स्थिति निश्चि नहीं होती है।
• जाति के सदस्यों में एक ऊँच-नीच का विभाजन पाया जाता है।	• प्रजाति में ऐसा कोई विभाजन नहीं पाया जाता है।
• जाति समाज में हजारों की संख्या में पायी जाती है।	• प्रजाति की संख्या बहुत ही कम होती है।

3 CHAPTER परिवर्तन की प्रक्रियाएं:-संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण

- वह प्रक्रिया जिसमें जाति व्यवस्था में निचले पायदान पर स्थित जातियाँ ऊँचा उठने का प्रयास करती हैं।
- **संस्कृतीकरण वह प्रक्रिया है** जिसके द्वारा निम्न जाति या समूह के लोग अपनी जातीय या सामाजिक स्थिति को परिशद्ध, परिमार्जित व उन्नत करने के उद्देश्य से उच्च जाति के के आदर्शों मूल्यों, विचारों, कृतियों तथा संस्कारों को ग्रहण कर लेते हैं।
- ऐसा करने के लिए वे उच्च या प्रभावी जातियों के रीति–रिवाज या प्रचलनों को अपनाती हैं।
- यह समाजशास्त्र की पासिंग नामक प्रक्रिया के जैसा ही है।
- इस शब्द के प्रयोग को भारतीय **समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने 1650** के दशक में लोकप्रिय बनाया।

संस्कृतीकरण की अवधारणा-

- श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण को परिभाषित करते हुए कहा, "एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा निम्न जातियाँ उच्च जातियों, विशेषकर ब्राह्मणों के रीति रिवाजों, संस्कारों, विश्वासों, जीवन विधि एवं अन्य सांस्कृतिक लक्षणों व प्रणालियों को ग्रहण करती हैं।"
- श्रीनिवास का मानना है कि "संस्कृतीकरण की प्रक्रिया अपनाने वाली जाति, एक-दो पीढ़ियों के पश्चात् ही अपने से उच्च जाति में प्रवेश करने का दावा प्रस्तुत कर सकतीहै।"
- श्रीनिवास यह भी कहते हैं कि "किसी भी समूह का संस्कृतीकरण उसकी प्रस्थिति को स्थानीय जाति संस्तरण में उच्चता की तरफ ले जाता है।
- सामान्यता यह माना जाता है कि संस्कृतीकरण संबधित समूह की आर्थिक अथवा राजनीतिक स्थिति में सुधार है अथवा हिन्दुत्व की महान परंपराओं का किसी स्त्रोत के साथ संपर्क होता है।
- परिणामस्वरूप उस समूह में उच्च चेतनता का भाव उभरता है। महान परंपराओं के यह स्त्रोत कोई तीर्थस्थल हो सकता है, कोई मठ हो सकता है अथवा कोई मतांतर वाला संप्रदाय हो सकता है।"
- निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संस्कृतीकरण जिसमें कोई जाति या समूह सांस्कृतिक दृष्टि से प्रतिष्ठित समूह के रीतिरिवाज एवं नामों का अनुकरण कर अपनी सामाजिक प्रस्थिति को उच्च बनाते हैं।

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया

- जाति व्यवस्था को भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक **अद्वितीय विशेषता** माना गया है।
- यह भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्तरीकरण को प्रदर्शित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है।
- भारत में जातियों को समान नहीं मानते हुए एक जाति को अन्य जाति से उच्च माना गया है।
- इस क्षेत्र में देश के प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास द्वारा एक अध्ययन किया गया तथा संस्कृतिकरण की अवधारणा प्रस्तुत की गई।
- उन्होंने समाज के वंचित वर्ग के लिए निम्न जाति समूह का प्रयोग किया।
  - इन्होंने सन् 1952 में संस्कृतिकरण की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग किया।
- इनसे पूर्व जाति व्यवस्था का अध्ययन वंशानुक्रम शुद्धता या अशुद्धता की अवधारणा पर किया जाता था।
  - इन्होंने जाति व्यवस्था को उर्ध्वाधर गतिशीलता की अवधारणा से विवेचित करने का प्रयास किया।
- इनकी अवधारणा से पूर्व जाति व्यवस्था को जन्म आधारित एक कठोर व्यवस्था माना जाता था।
  - इसका समर्थन एस वी केतकर (हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इंडिया), मदान तथा मजूमदार जैसे समाज शास्त्रियों द्वारा किया गया है।
- श्रीनिवास ने इनके विपरीत जाति व्यवस्था को गतिशील मानते हुए इसमें परिवर्तन की संभाव्यता को प्रकट किया है।

संस्कृतिकरण की विशेषताएँ

- संस्कतीकरण का सम्बन्ध मुख्यतः निम्न जातियों की जीवन-शैली में होने वाले परिवर्तनों से है।
- संस्कृतीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित जातियों में मात्र पदमुलक परिवर्तन होता है न कि संरचनात्मक (Structural) संस्कृतीकरण की प्रक्रिया केवल निम्न हिन्दू जातियों में ही नहीं, बल्कि जनजातियों तथा अर्द्ध-जनजातीय समूहों में भी पाई जाती है।
  - भील, गोंड, ओरॉव आदि जनजातीय समूहों ने हिन्दू जीवन-पद्धति को अपनाकर ऊँचा उठने का प्रयास किया है।
- संस्कृतीकरण सामाजिक गतिशीलता की एक सामूहिक प्रक्रिया (Co-operate Process) है न कि व्यक्तिगत ।
- अर्थात इसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति या परिवार विशेष के जीवन में चलने वाली परिवर्तन की प्रक्रिया से नहीं है।
- भारतीय सन्दर्भ में संस्कृतीकरण एक सार्वभौमिक प्रक्रिया रही है।
- संस्कृतीकरण की प्रक्रिया से गुजरने वाली जातियां संस्कृत साहित्य में उपलब्ध विचारों एवं मूल्य को भी स्वीकार कर लेती हैं तथा पाप-पुण्य. संसार, धर्म-कर्म, माया और आदि शब्दों का प्रयोग अपनी बातचीत में भी करने लगती हैं।
- संस्कृतीकरण कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं है जो सहज भाव से अनवरत रूप से चलती रहे। चूँकि संस्कृतीकरण के अन्तर्गत एक लम्बे समय से स्थानीय परम्परागत नियमों का विरोध होता है। इसलिए प्रभुजाति के लोग संस्कृतीकरण का विरोध करते है क्योंकि वे कभी यह नहीं चाहते हैं कि समाज के निम्न स्तर का व्यक्ति उनकी बराबर हो जाए।
- योगेन्द्र सिंह संस्कृतीकरण को एक प्रत्याशी समाजीकरण की प्रक्रिया मानते हैं। संस्कृतीकरण से गुजरने वाली जाति उच्च जाति की संस्कृति को इस उम्मीद से अपनाती है कि उसे उस जाति की सदस्यता या सामाजिक स्थिति मिल जाएगी।

संस्कृतिकरण द्विमार्गी प्रक्रिया

- संस्कृतिकरण द्विमार्गी प्रक्रिया है।
- निम्न जाति जहाँ उच्च–जाति से बहुत कुछ प्राप्त करती है, वहीं दूसरी ओर निम्न जाति भी कुछ–न–कुछ उच्च जाति को देती भी है।
- सम्पूर्ण भारत के हिन्दुओं के देवताओं के अतिरिक्त ब्राह्मण स्थानीय देवी–देवताओं की पूजा करते भी देखे गए है।
- ऐसा विशेष रूप से उस समय देखने को मिलता है जब महामारी से रक्षा की बात आती है अथवा पशु–धन, बच्चों की रक्षा तथा अन्न के संरक्षण का प्रश्न उठता है।
- श्रीनिवास ने उदाहरण देते हुए लिखा है कि कभी–कभी ब्राह्मण अपने किसी गैर–ब्राह्मण मित्र के द्वारा रक्त–बलि भी करवाते हैं।
- इस द्विमार्गी प्रक्रिया को लघु एवं वृहद् परम्पराओं की आत्मसात् की प्रक्रिया में भी देख सकते हैं।
- यह वास्तविकता है कि निम्न–जातियाँ उच्च–जातियों से लेती अधिक है तथा देती कम है।

संस्कार, राजनैतिक और आर्थिक शक्तियों का महत्त्व

- संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में संस्कार एवं राजनैतिक तथा आर्थिक शक्ति के लक्षण विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं।
- एक लक्षण सत्ता प्राप्त हो जाने पर अन्य दोनों क्षेत्रों में सत्ता प्राप्त हो भी सकती है अथवा नहीं भी।
- श्रीनिवास की मान्यता है कि इन तीनों लक्षणों में भिन्न–भिन्न असंगतियाँ भी मिल सकती है।
  - आर्थिक उन्नति के साथ संस्कृतिकरण हो जाए, आवश्यक नहीं है।
- ऐसा भी देखा गया है कि किसी समूह ने राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के कारण आर्थिक उन्नति कर ली और उस समूह का संस्कृतिकरण भी हो गया।
- श्रीनिवास ने मैसूर के गाँव में ऐसा भी पाया कि वहाँ के एक गाँव रामपुरा की अस्पृश्य जाति का अत्यधिक संस्कृतिकरण हो गया।
  - लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति पहले जैसी ही थी।
- संस्कृतिकरण में संस्कार, राजनैतिक एवं आर्थिक शक्ति, शिक्षा, नेतृत्व आदि महत्त्वपूर्ण तत्व है जो संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

संस्कृतिकरण के प्रोत्साहन के कारक

- संस्कृतिकरण एक परिवर्तन की प्रक्रिया है।
- इस प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने वाले अनेक कारक हैं।
- श्रीनिवास ने कुछ प्रमुख कारकों तथा स्त्रोतों की विवेचना की है, जो निम्न प्रकार हैं :

धार्मिक कारक

- श्रीनिवास की मान्यता है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को धार्मिक कर्मकांण्ड, ब्राह्मणों के संस्कार, तीर्थ–स्थान, मंदिरों आदि ने विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है।